शबरी के राम और कुब्जा के कृष्ण

डॉ. प्रवीण पण्ड्या
प्राचार्य, शिक्षा विभाग
राजस्थान सरकार

भारत की चेतना में एक ओर राम हैं तो दूसरी ओर कृष्ण हैं। राम राजसत्ता को तिनके की भाँति त्याग करके मानवीय मूल्यों की रक्षा को अधिक महत्त्व देते हैं तो कृष्ण उन्हीं मूल्यों की रक्षा के लिए राजसत्ताओं के चक्रव्यूहों के भीतर प्रवेश करके उन्हें छिन्न-भिन्न करते हैं। राम मुनिजीवन बीता रही शबरी को आदर देते हैं तो कृष्ण समाज की अवहेलना सह रही कुब्जा को मान देते हैं। मुनिजीवन जीने वालों के पास वन में उत्पन्न कन्दमूल सत्कार के लिए होता है तो नागरिक जीवन जी रही कुब्जा के पास धन-वैभव सब है, किन्तु उसकी शरीररचना ने उसे प्रेम से वञ्चित कर दिया। राम शबरी का वन्य स्वीकारते हैं और कृष्ण कुब्जा के प्रेम को मान देते हैं। भले ही, बाद में क्षत्रिय और शबरों के बीच ऊँच-नीच हो गई हो, किन्तु वाल्मीकि के समय में न शबरी दयनीय है और न राम उसे दया का पात्र मानते हैं। दोनों अपनी अपनी सत्ता में ऊँचे हैं, उदात्त हैं। राम का यह समभाव है तो कृष्ण का प्रेमभाव भी उससे कम नहीं है। जो कुब्जा उपेक्षित है, जिससे कोई प्रेम नहीं करता है, उसे प्रेम देते हैं—**तस्यै कामवरं दत्त्वा मानयित्वा च मानदः।** धन्य है भागवतकार और धन्य है उनका कवित्व। क्या शब्द प्रयुक्त किया है उन्होंने कृष्ण के लिए ! कृष्ण को मानद कहा है—मान देने वाला। वह मानद एक कुब्जा, एक सैरन्ध्री को मान देता है। यह है—**प्रेमा पुमर्थो महान्**। कोई द्वन्द्व न उनके भीतर पैदा हो सकता है और न उन्हें बाँध सकता है।

शबरी माता है, वृद्धा है, श्रमणी अर्थात् तपस्विनी है। एक लम्बा जीवन उसने जी लिया है। आश्रम में वह रहती है। उसके गुरु मतंग ऋषि भी हैं और मुनि भी। पम्पा के पश्चिमी तट पर स्थित मतंग मुनि के आश्रम में परिचर्या—सेवा का कार्य करती है। मतंग कोई नाम है या मतंग जाति के किसी व्यक्ति का नाम। किरात जाति का एक नाम मतंग भी है। मतंग मुनि के शिष्य मातंग कहलाते हैं। मातंगों का पूरा अरण्य है। वाल्मीकि इन किरातों को ऋषि कहते

हैं—**मतङ्गशिष्यास्तत्रान्नृषयः सुसमाहिताः**। इन मातंगों या किरातों या शबरों के पास ऋषित्व के साथ मुनित्व भी है—

तत्र हंसाः प्लवाः क्रौञ्चाः कुरराश्चैव राघव।
वल्गुस्वरा निकूजन्ति पम्पासलिलगोचराः।।
नोद्विजन्ते नरान् दृष्ट्वा वधस्याकोविदाः। (७-८, सर्ग ६९, अरण्यकांड, वा.रा.)

पम्पासरोवर के हंस आदि जानते ही नहीं हैं कि वध क्या होता है ! कारण कि उसके किनारे रहने वाले मतंग शिष्य मुनिवृत्ति से जीते हैं। इस अरण्य में नागों की—हाथियों की बहुतायत है, किन्तु मतंग मुनि के विधान से वे आश्रम पर आक्रमण नहीं करते हैं। मतंग मुनि में प्रतिष्ठित अहिंसा जंगली हाथियों को भी प्रभावित करती है। शबरी इस आश्रम की चिरजीविनी है, वृद्धा है, विज्ञान से अबहिष्कृत होने के बावजूद अपने मुनिभाव की पराकाष्ठा से परिचर्या करती है। वह इहलोक के जीवन से ऊपर उठ चुकी है, किन्तु गुरु के निर्देश का पालन करती हुई राम की प्रतीक्षा करती है। वह साधक नहीं, सिद्ध है। उसमें पूर्णता है। पूर्णता है तो प्रेम है, विनय है। वह राम के लिए पम्पा के किनारे उगे वन्य अर्थात् फल-मूल को चुन कर रखती है। वह वन मतंगवन है। महान् वन है। शबरी के लिए राम अतिथि है, उसके गुरु द्वारा निर्दिष्ट अतिथि। राम सर्वभूतनमस्कृत है—समस्त प्राणियों द्वारा नमस्कार पाने वाले कर्त्तव्यपथ के महान् यात्री। वह धर्मात्मा है और शबरी धर्म में स्थित है। इसलिए वह सिद्ध तपस्विनी राम के दर्शन तक अपने जीवन को पराकाष्ठा तक नहीं पहुँचाती है। ज्यों ही राम को सुनाने योग्य "श्रोतव्य" सुना देती है और देखने योग्य "द्रष्टव्य" मतंगवन दिखा देती है तो राम से अपने कलेवर को छोड़ने की आज्ञा माँगती है—

कृत्स्नं वनमिदं दृष्टं श्रोतव्यं च श्रुतं त्वया।
तदिच्छाम्यभ्यनुज्ञाता त्यक्तुमेतत्कलेवरम्।। (२३, सर्ग ६९, अरण्यकाण्ड, वा.रा.)

शबरी का यह स्वागताचार उसके गुरु द्वारा प्रदत्त आज्ञा का पालन करना है। राम जब चित्रकूट में थे, तब शबरी के महाप्रभावी गुरु को राम के बारे में उसे बताकर जीवन को पूर्ण कर चुके थे किन्तु शबरी को राम के आने तक, उनके उपकार के लिए रोक दिया था। इन मातंग ऋषियों के आश्रम से होकर ऋष्यमूक की ओर रास्ता जाता था। एक तरह से ऋष्यमूक इन मातंगों का ही पर्वत था। वहाँ बाली नहीं जा सकता था। मातंगों की तरह वानर भी अरण्यवासी थे। सीता को ढूढ़ रहे राम को कबन्ध (दनु) ने परामर्श दिया कि नरमांस भक्षकों के सभी ठौर-ठिकानों का पता वानर जाति को रहता है और वानरजाति के राजपरिवार के निर्वासित योद्धा सुग्रीव से मित्रता करके वह सीता को प्राप्त कर सकते हैं।

नरमांस भक्षक राक्षस कहलाते हैं और इन राक्षसों की गतिविधि के बारे में मातंग और वानर जानते हैं—

संनिधायायुधं क्षिप्रमृष्यमूकालयं कपिम्।
कुरु राघव सत्येन वयस्यं वनचारिणम्।।
स हि स्थानानि सर्वाणि कास्स्न्र्येन कपिकुञ्जरः।
नरमांसाशिनां लोके नैपुण्यादधिगच्छति।।

(१७-१८, सर्ग ६८, अरण्यकांड, वा.रा.)

मनुष्यों को मार कर उनका मांस खा लेने वालों की दुनिया में नैपुण्य से जाने का काम जो कर सकता है, उस सुग्रीव के संरक्षक मुनि का संदेश युवा राम को बूढ़ी शबरी सुनाती है। मतंग अरण्य और उसमें स्थित आश्रम से होते हुए ही राम को ऋष्यमूक पहुँचना था। मतंग मुनि स्वयं रूक नहीं सकते थे और राम का स्वागत भी उनके आश्रम में किया जाना था। तब वे अपनी प्रतिनिधि जिसे चुनते हैं, वह है संन्यास ले चुकी श्रमणी शबरी। शबरी उसी आध्यात्मिक ऊँचाई पर है, जिस पर उसके गुरु हैं।

गुरु की गुरुता है और शिष्या की श्रद्धा। राम जानते हैं कि मतंग मुनि का वन दिव्य वन है। उसकी दिव्यता को बाहर की आँखें नहीं देख सकती हैं। राम बड़ी उत्सुकता से अरण्य दर्शन की बात रखते हैं और शबरी उन्हें योग्यतम समझती हुई अरण्यदर्शन करवाती है। ये दो महान् व्यक्तित्वों की भेंट है। इसी भेंट को परवर्ती साहित्य में भक्त और भगवान् की भेंट में रूपान्तरित किया गया।

(२)

कुब्जा को श्रीमद्भागवत सैरन्ध्री कहता है। वह मथुरा के राजा की सेवा में नियुक्त युवती सैरन्ध्री है, किन्तु कुब्जा है। तीन ओर से टेढ़ी है—त्रिवक्रा है। मुख से सुन्दर किन्तु देह से कुब्जा। वह मथुरापति भोजराज कंस के अनुलेपन की सेवा में नियुक्त राजकीय कार्मिक है। मथुरा के राजमार्ग पर उस युवती कुब्जा सैरन्ध्री और कृष्ण की भेंट हो जाती है। हाथ में अनुलेप का पात्र लिए जा रही कुब्जा से कृष्ण अनुलेप माँगते हैं और वह राजभय की परवाह नहीं करते हुए राजा के लिए ले जा रहे अनुलेपन में से बलराम और कृष्ण को दे देती है। कृष्ण लीलाविधान के विज्ञ हैं। वह उसे खींच कर सीधी कर देते हैं—

तां तु कुब्जां ततः कृष्णो द्व्यङ्गुलेनाग्रपाणिना।
शनैः संतोलयामास कृष्णो लीलाविधानवित्।।

सा तु मग्नस्तनयुग्मा स्वायताङ्गी शुचिस्मिता।
जहासोच्चैःस्तनतटा ऋजुयष्टिर्लता यथा।।

(३१-३२, सर्ग ७१, विष्णुपर्व, हरिवंशपुराण)

कुब्जा कृष्ण के प्रति आकृष्ट हो जाती है और अपना ग्रहण करने की प्रार्थना करती है, किन्तु कृष्ण उस कामपीडिता को मुस्कुराहट के छोड़ विसर्जित करते हैं—

कृष्णस्तु कुब्जां कामार्तां सस्मितं विससर्ज ह। (३१-३२, सर्ग ७१, विष्णुपर्व, हरिवंशपुराण)

यह उसे छोड़ चले जाना नहीं है, अपितु वह उसे अपना स्मित देकर भेजते हैं। तभी तो भागवतकार इस प्रसंग में कहते हैं—

एवं स्त्रिया याच्यमानः कृष्णो रामस्य पश्यतः।
मुखं वीक्ष्यानुगानां च प्रहसंस्तामुवाच ह।।
एष्यामि ते गृहं सुभ्रुः पुंसामाधिविकर्शनम्।
साधितार्थोऽगृहाणां नः पान्थानां त्वं परायणम्।।

(१०-११, सर्ग ४२, दशम स्कन्ध)

कृष्ण कहते हैं कि तुम्हारा घर तो पुरुषों की मानसिक आधि को मिटाने वाला है और हम पथिकों, जिनके यहाँ घर नहीं है, तुम सहारा हो। कृष्ण अपना वादा निभाते हैं। कंसवध के बाद वह सैरन्ध्री के घर जाते हैं—

अथ विज्ञाय भगवान् सर्वात्मा सर्वदर्शनः।
सैरन्ध्र्याः कामतप्ताया: प्रियमिच्छन् गृहं ययौ। (१, सर्ग ४८, दशम स्कन्ध)

कुब्जा प्रेमिका है और कृष्ण उसके लिए प्रेमपात्र है। उसने कृष्ण को अनुलेप देने का पुण्य क्या अर्जित कर लिया कि उस पुण्य से कृष्ण ने उसे शय्या में स्थान देकर उस रामा के साथ रमण किया—

आहूय कान्तां नवसङ्गमह्रिया विशङ्कितां कङ्कणभूषिते करे।
प्रगृह्य शय्यामधिवेश्य रामया रेमेऽनुलेपार्पणपुण्यलेशया।। (६, सर्ग ४८, दशम स्कन्ध)

और वह सैरन्ध्री भी इस तरह कृतकृत्य हो उठी—

सानङ्गतप्तकुचयोरुरसस्तथाक्ष्णोर्जिघ्रन्त्यनन्तचरणेन रुजो मृजन्ती।
दोर्भ्यां स्तनान्तरगतं परिरभ्य कान्तमानन्दमूर्तिमजहादतिदीर्घतापम्।। (७, सर्ग ४८, दशम स्कन्ध)

कुब्जा होने से उसका अत्यन्त दीर्घ ताप था। कृष्ण उसकी कामना को पूर्ण करते हैं। वह सर्वात्मा और सर्वदर्शन है।

शबरी माँ है, जीवन की पूर्णता को अधिगत कर चुकी है, वह धर्म में स्थित है, जबकि सैरन्ध्री प्रेमिका है, जीवन उसका बाकी है और वह काम में स्थित है। भागवतकार कहते हैं—

दुराराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम्।
यो वृणीते मनोग्राह्यमसत्त्वात् कुमनीष्यसौ। (७, सर्ग ४८, दशम स्कन्ध)

भागवतकार इस कथा का जो तत्त्वानुसन्धान करते हैं, वह एक ऐसे मनीषी की पहचान है, जिसकी मनीषा खोटी है। जो दुराराध्य हैं—जिसकी आराधना कठिन है। जो सभी ईश्वरों के भी ईश्वर हैं। वैसे दुराराध्य व सर्व-ईश्वरों के ईश्वर की आराधना करके भी यह कुमनीषी सत्त्वहीनता के कारण जिसका वरण करता है, वह उसका मनोग्राह्य होता है, न कि विवेकग्राह्य। यह है कुमनीषी की पहचान का शास्त्र। कुब्जा कृष्ण को प्रसन्न कर लेती है, किन्तु उनसे सर्वोत्तम प्राप्य "मोक्ष" नहीं माँगती है। माँ शबरी के लिए राम धर्म है। कुब्जा के लिए अनुपम सुन्दर और सर्वोच्च कृष्ण काम है और इस काम या कामना में कृष्ण के प्रति वह गूढ प्रेम अन्तर्निहित है, जिसने क्रूर कंस के भय की परवाह नहीं करते हुए राजपथ पर चलते कृष्ण को अनुलेप प्रदान किया। कृष्ण प्रेम के पारखी हैं। वह इसी प्रेम का मान रखते हैं। धर्म और प्रेम—भारत के दो देवता हैं। एक शबरी के राम हैं तो दूसरे कुब्जा के कृष्ण।